REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 5 | FEBRUARY - 2019

हिंदी नाटक एवं संवैधानिक मूल्य

डॉ. रवींद्रकुमार शिरसाट
सहयोगी प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, श्रीमती केशरबाई लाहोटी महाविद्यालय अमरावती

बारहवीं शताब्दी में काश्मीर के राजवंश का इतिहास राजतरंगिनी में लिखा है कि राज्य के प्रमुख कर्तव्य है – धर्म पालन एवं प्रजा को अभय प्रदान करना। इससे पता चलता है कि युगों से मानव मूल्यों का मानव जीवन में महत्व रहा है। बारहवीं शताब्दी के पहले महापुरूषों ने जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठापना कर पूरे संसार को रोशनी प्रदान की थी। वही मूल्य विविध रंग बदल बदलकर समय–समय पर जिंदा धडकनों को स्वर देते रहे। यह जीवन मूल्य समाज, संस्कृति और राष्ट्र की परंपरा से भी जुड़े थे। आधुनिक युग में भी यही मूल्य हमारे मानवीय दृष्टिकोन को नई सोच और उर्जा देकर जीवन की बंजर और भयावह भूमि सींचने और जोतने की शक्ति प्रदान कर रहे है। मूल्यों की दृष्टि से सबसे बड़ी क्रांति तब आयी जब डॉ. अम्बेडकर ने इन मूल्यों को संविधान में स्थान देकर उनकी प्रतिष्ठापना की। इसी के चलते वर्तमान साहित्य में मूल्यों का प्रतिफलन व्यापक धरातल पर हो रहा है। भारतीय संविधान में समता, स्वतंत्रता, बुधंत्व, न्याय, धर्मनिरपेक्षता, जैसे नये मूल्य समाएं हुए हैं। इनमें न केवल शासन तंत्र की व्यवस्था है अपितु सुनियोजित सामाजिक परिवर्तन को भी पूरी गुंजाइश है। बाबासाहब ने कहा था कि हमारे संविधान के सिद्धांत यदि सर्वोत्कृष्ट नहीं होते तो यह दुनिया के किसी भी संविधान से घटकर भी नहीं हे।'' जहाँतक साहित्य का सवाल है मूल्यों की परंपरा सिद्ध, नाथ, जैन, साहित्य तथा मध्यकाल में कबीरादि संत तथा आधुनिक युग में प्रेमचंद प्रसाद, पंत, निराला मैथिलीशरण गुप्त आदि अनगिनत रचनाकारों का साहित्य मूल्य निर्वाह के संदर्भ में असंदिग्ध है। स्वातत्र्योत्तर युग में साहित्य की विभिन्न विधाओं में प्रबुद्ध लेखकों ने जीवन मूल्यों के प्रति सजगता दिखाई है। साहित्य की प्रमुख विधाओं के अन्तर्गत नाटक ऐसी विधा है जिसमें जीवनमूल्यों पर विशेष बल दिया है। इसका मूल कारण यह है कि संवैधानिक मूल्यों की प्रतिष्ठा के पूर्व ही मनुष्यरूपी दानवों ने हमारे लोकतांत्रिक मूल्यों को अपने पैरों तले रौंदकर देश की अखंडता, धर्मनिरपेक्षता में बाधा उत्पन्न की है, इसलीए आज जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठापना की दृष्टि से नाट्य साहित्य की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण है।

डॉ. वीणा गौतम लिखती है – ''भारत के आचार–विचार, चिंतन–मनन को यदिवर्तमान में काई बात झिंझोड रही है तो वह है मूल्यों की जीवन से बेमेल होना या खो जाना। अन्यविधाओं के समान नाट्य–साहित्य का प्रयतन एक नये आकाश की ओर बढ़ते हुए समाज के नये स्वरूप को तलाशकर नये जीवनमूल्यों को अपनाने में अपनी अहं भूमिका निभा रही है।''[1] हिंदी में दर्जनों ऐसे नाटक है जिसमें संवैधानिक मूल्यों की परंपरा को सुदृढ एवं विकसित करने की चेष्टा की है। पुरानी समाजव्यवस्था को नकारकर समताधिष्ठित, विभागनिष्ठ स्वस्थ एवं सुंदर समाज की परिकल्पना की है। इसके लिए जाति, वर्ण धर्म, सांप्रदायिक जैसी बातों से उंपर उठकर देश की एकता, अखंडता का विरोध करनेवाली एवं दमन तथा शोषण करनेवाली व्यवस्था का विरोध किया है। नाट्य साहित्य दीपधर्मी बनकर जीवनमूल्यों का संरक्षण कर रहा है। स्वतंत्र भारत की नई स्थितियों में नये चिंतन को जन्म दिया है। आज जनचेतना की दृष्टि से संविधान हमारे आस्था का दर्शन है। साहित्य इसी दर्शन को अर्थात मूल्यों को भावना के स्तर पर जन–मन तक पहुंचाने का कार्य कर रहा है। ''मूल्य, समाज की

सभ्यता, संस्कृति की नींव है, मूल्यों में युगानुरूप लचक जरूरी है। व्यक्ति, समाज, और संस्कृति के संदर्भ में मूल्यों की भूमिका असंदिग्ध है। कहते हैं कि – साहित्य मानव को सही अर्थो में जीना सीखाता है और जीवन की अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त और सर्वोत्तम माध्यम साहित्य है। दूसरे शब्दों में समाज की अभिव्यक्ति है। समय–समय पर इन मूल्यों का प्रतिफलन साहित्य में व्यापक धरातल पर हुआ है।''[2]

आज पूरी दुनिया में ज्ञान का प्रतीक कहे जानेवाले भारतीय संविधान के निर्माता डॉ. अम्बेडकर को साहित्य से बडी उम्मीद थी उन्होंने 1932 के अपने भाषण में विद्यार्थियों को संबांधित करते हुए कहा था – ''मुझे देश के लिए इंजिनियर चाहिए, डॉक्टर चाहिए वकील चाहिए परन्तु सबसे अधिक आवश्यकता मुझे साहित्यकारों की है, क्यो कि समाज को अगर सृजनशील बनाना है, समाज की पुर्नरचना करके उसे शोषण मुक्त करना है, उसकी धारणा समजा के नींव पर खडी करनी हो तो साहित्यकारों की जरूरत होती है।''[3] इसप्रकार समाज को संस्कारशील, गतिशील बनाने के लिए समाज का स्थितिशील परंपरागत मन बदलने के लिए समाज में मूलभूत परिवर्तन लाने के लिए समाज को परिष्कृत करने के लिए साहित्य को सबसे प्रभावी माध्यम है।

साहित्य सृजनकर्ता को यह पता होना चाहिए कि साहित्य की कितनी बड़ी भूमिका है। इस संदर्भ में फ्रेंच विद्वान जॉ पॉल सार्त ने सन 1920 में अपने लेख What is Literature में कहा है – ''साहित्य केवल साहित्य नहीं बल्कि कृति (Art) भी है, और मनुष्य को जो दुष्ट प्रकृति के विरूद्ध सतत संघर्ष चलता रहता है उस संघर्ष में लेखन यह प्रयोजन के तहत उपयोग में लाया जानेवाला शास्त्र है, यह लेखक को समझने की आवश्यकता है।''[4] हिंदी नाटक सार्त की इस अभिलाषा पर खरा उतरता है। हिंदी नाटक विधा ने नाटक को धार–धार शास्त्र बनाकर उसके माध्यम से नई मेन्टॅलिटी का निर्माण करने की चेष्टा की है। समाज में रिवॉल्युशन लाने के लिए मूल्यों पर विशेष जोर दिया है।

''सूखा सरोवर (1961) यह डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का मूल्यों की स्थापना की दृष्टि से सार्थक नाटक है। वीना गौतम की मान्यता है कि 'सुखा सरोवर' कई स्तरों पर सुखा सरोवर कथ्य, वस्तु, पात्र, चरित्र, घटनाएं अनेकार्थी होकर वर्तमान में अपनी गूंज देते हैं। 'जलदेवता' आत्मा है सरोवर की जो भारतीय संविधान को व्याख्यायित करता है और सरोवर भारतीय लोकतांत्रिक चेतना का पर्याय है। इसमें अनेक सत्याक्षित अर्थ खलते चलते हैं।''

''सरोवर पानी ही पानी नहीं,
प्यास भी हैं
अपनी ही नहीं
सारी नगरी की।''
''राजा भी हमारी तरह व्यक्ति है
हम समाज है एक से एक मिलकर
इसलिए हर व्यक्ति राजा है।''[6]

डॉ. चंद्रशेखर के मतानुसार – प्रस्तुत नाटक में सिंहासन धर्मिता, समकालीन यथार्थवाद का घृणित यथार्थ है। सांप्रदायिक सत्ता की मूल प्रतिबद्धता कुर्सी है। वही सम्पूजा और वरेव्याता है। उसी की रक्षा के लिए संविधान, संशोधन, न्याय, परिवर्तन हुए है। न्यायधिशों की करव्यता तोडी गई। प्रतिपक्ष को अवास्तविक संकट की आड़ में प्रतिबंधित किया गया। सिंहासन की मानवघाती परिकल्पना ने इतिहास में कितनी बर्बरता और रक्तपात फैलाया है। यह स्थिति समकालीन सत्ता सकेन्द्रण की विद्रूपता को उजागर करती है।''[7] हमारे जननेताओं ने मतसंग्रह के लिए जातिवाद, प्रांतीयता को स्वयं उभारा है। हम समस्याओं के समाधान नहीं थोपे नारे थमाएं है। इसमें दोराय नहीं कि आज धर्म और राजनीति के गठबंधन ने जनता के शोषण को गहरा किया है, जातिभेद, छुआछुत, उंच–नींच के बीच राजनीति और धर्म के गठबंधन की देन है। आज समाज के प्रत्येक व्यक्ति के मन को विषाक्त कर दिया है। देश की अखंडता की दृष्टि से यह सबसे बड़ी बाधा है। आपसी प्रेम और भाईचारे की भावना ही देश को बचा सकती है।

''बाढ़ का पानी'' (1980) यह शंकर शेष की मौलिक नाट्यकृति है, जिसमें लेखक ने जातिभेद के उंपर उठकर नाटक का नायक पात्र पढा लिखा 'चंदन' गांव में बाढ आने पर सवर्णो के प्राण बचाता है, उन्हें अपने

घर में आश्रय देकर भाईचारे की सीख देता है। इसप्रकार राष्ट्र के स्वाधीनता के साथ–साथ लोकतांत्रिक संविधान के चलते साहित्यकार को अन्वेषण दृष्टि में परिवर्तन आना ही था। अतः डॉ. शंकर शेष ने समता और भाईचारे के मूल्य पर बल दिया है।

''राम की लड़ाई'' (1979) लक्ष्मीनारायणलाल जी की नाट्यकृति है, जिसमें सदियों से पददलित शोषित, उपेक्षित वर्ग की त्रासदी को स्वर दिया गया है। लेखक ने आलोच्य नाटक में 'स्वतंत्रता' के मूल्य की बात रखी है। आजाद देश में दरिद्रता की समस्या के साथ ही श्रम के मूल्य को उजागर किया है –

जीते हो दरिद्रता, करते हो अन्याय
बात करते हो आजादी की।
राम और कृष्ण ने युद्ध किये हैं
फिर आयी है स्वतंत्रता
उठाओ यह धनुष्य
फल प्राप्त करो राम।
नष्ट हो सारी दरिद्रता।''[8]

''राम की लड़ाई'' में सदियों से उपेक्षित, शोषित जनसामान्य की पीड़ा मुखारित हुई है। देश को जो स्वतंत्रता मिली वह राजनैतिक थी। राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में उसका महत्व था किन्तु व्यक्तिगत जीवन में उसका महत्व और अर्थ दूसरा है। स्वतंत्र होकर कर्म की दृढ़ता से ही हम अपने लिए नई संभावनाओं के द्वार खोल सकते हैं और स्वतंत्रता को सार्थक जीवन में उन्नति विकास के लिए श्रम संकल्प दूरदृष्टि की आवश्यकता है। नाटक में नाटककार ने स्वतंत्रता मूल्य पर जोर देते हुए श्रम की प्रतिष्ठा को महत्व दिया है।

हमारे संविधान में श्रम को लेकर केन्द्र सरकार को न केवल कानून बनाने का अधिकार दिया गया है बल्कि उन्हें लागू करने की व्यवस्था भी की गई है। हमारा संविधान सरकार की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक दिशा के निर्देशन का स्त्रोत है। वह समाज के लिए एक आर्थिक व्यवस्था का भी निर्धारण करता है। अर्थात संविधान यह तय करता है कि उत्पादन साधनों के स्वामित्व तथा प्रबंध का क्या स्वरूप हो और समाज में आय का वितरण किस प्रकार किया जाए। डॉ. अम्बेडकर चाहते थे कि संविधान के आधार पर श्रमिकों को छूट और समानता मिलनी जरूरी है और उसके संतुलन के लिए एक संविधान हो। बाबासाहब समाजवाद को प्राथमिकता देते थे और संविधान को राजनैतिक साधन होने के साथ–साथ आर्थिक विकास का भी श्रोत है। बाबासाहब ने कहा है कि समाज के आर्थिक स्वरूप का निर्धारण कर देना व्यक्ति स्वातंत्रता पर आघात है, लेकिन आगे उन्होंने यह भी कहा कि वैयक्तिक स्वतंत्रता के संरक्षण का तकाजा है कि संविधान समाज के आर्थिक स्वरूप का निर्धारण करें। किसान हमारे भारत देश का अन्नदाता है, परंतु बलिराजा की तरह आज भी उसे छला जा रहा है। उसके साथ विश्वासघात हो रहा है। वह दाता होकर भी दुखी है। आत्महत्या करने के लिए मजबूर है। इस तरह आज संवैधानिक मूल्यों का बलात हो रहा है। ऐसे में शोषक वर्ग के प्रति जनता को जागरूक करना और यथास्थितिवादी जड़ता को तोड़ना रचनाकार का मूल उद्देश्य है। स्वतंत्र भारत के परिवेश में सत्तातंत्र के मानवघाती रूप को नाटककारों ने उजागर किया है। दिन–ब–दिन अपनी साख खोती जा रही व्यवस्था गूंगी–बहरी हो गई है। वह लोगों की पीड़ा को नहीं समझ पाते। इस संदर्भ में कवि परिचय दास की एक कविता बड़ी सार्थ मालूम होती है–

आत्महत्या करते किसान के
दुःख में समा नहीं पा रही कविता
जिंदगीः एक फलहीन उदासी
रंगहीन और शून्य आसमान में
निःसहाय होकर किसान ने चीखमारी
और पृथ्वी पर लुढक गया
हजारों शब्दोंवाले संविधान की

पंक्तियों से होते हुए
आज के तल में
उसकी आत्मा भटक रही।''[9]

हमारा संविधान सभी को जीने का बराबर का अधिकार देता है परंतु स्वार्धान्ध लोग गरीबों का, मजदूर किसानों का हम मार लेते हैं तब गरीब, मजदूर किसान की जिंदगी नर्क बन जाती हैऔर वह मौत को गले लगा लेता है। हमारे देश के संविधान ने स्त्री और पुरूष को समान दर्जा दिया है लेकिन यहां के पुरूषसत्ताक व्यवस्था स्त्री को आज भी दोयम स्थान देती है। उसके साथ लिंगभेद होता है। उसे भोग्या के रूप में देखा जाता है। एक इंसान के रूप में उसे नहीं देखा जाता यही वर्तमान समय का सबसे बड़ा सच है। विष्णु प्रभाकर मानवतावादी कलाकार है और यथार्थ की अपेक्षा मानव मूल्यों के आदर्श रूप का उदात्त चित्रण ही आपको अधिक भाता है।

नाटककार विष्णु प्रभाकर जी स्त्री का सम्मान करते थे। उसकी नैसर्गिक स्वतंत्रता एवं अधिकार उसे लौटाने पर बल देते हैं। 'अब और नहीं (1981) नाटक की नायिका पात्र मंजरी के माध्यम से नाटककार कहते हैं – ''पुरूष अपने खोला के भीतर सदा सामंतवादी रहता है। निर्दयी, अधिनायकवादी, क्रूर और अनुदार।'' विष्णु प्रभाकर का दूसरा नाटक 'स्वेत कमल' की नायिका कहती है – ''मैं पूछती हूँ पुरूषप्रधान समाज में नर–नारी के सबंध कैसे है? क्या वे एक दूसरों के पूरक है या भक्षक? पुरूष भक्षक और नारी भक्ष्य। क्या आज जागरण के युग में भी पुरूष की भूख–तीव्र से तीव्रतर नहीं होती जा रही है? क्या आज भी उसके दांत और पंजे पैने–से–पैने नहीं होते जा रहे है? उन पैने दातों और नाखूनों में फंसकर नारी शरीर चिथडे–चिथडे नहीं हो रहा है।''[10]

आलोच्य नाटक में पुरूष की बर्बरता का पर्दाफाश किया है। पुरूष, स्त्री को लावण्यवती, मोहक, सुदर्शन, अंगों को निर्वस्त्र करनेवाली, मंत्री, अधिकारियों भोगियों के साथ निःसंकोच रमण करनेवाली रमणि के रूप में देखता है। वह स्त्री को कठपुतली के रूप में नचाता है और खिलौने के रूप में खेलता है और जब चाहे खिलौने को तोड़ देता है। दरअसल स्त्री, पुरूष के लिए देह से कुछ भी नहीं है। इसके बावजूद नारी सदियों से अपने अस्तित्व के लिए लड़ रही है। संविधान में दिये गये अधिकारों के बूते पर वह अदम्य इच्छाशक्ति का प्रयोग करते हुए मनुवादी कृति से लड़ रही है। संघर्ष कर रही है। अपने स्वाधीनता के लिए क्योंकि स्वतंत्रता का प्रश्न बड़ा ही जटिल और यक्ष्य प्रश्न बन चुका है। पुरूषप्रधानसमाज का अधिनायकवादी वर्चस्व आज भी कायम है। और समाज में आज भी नारीकी भूमिका को अर्थहीन माना जाता है, परन्तु अच्छी–बात यह है कि स्त्री अब पुरूषों की सोच और समझपर पूर्णतः निर्भर है। वह अपने को पुरूष से कमतर नहीं मानती। लेकिन ऐसी नारियों की संख्या बहुत कम है। अधिकांश औरतो को आज भी न पॉव होते है न पंख होते है, न कोई जमीन चलने के लिए न कोई आसमां किसी परवाज के लिए। फिर भी नारी हार नहीं मानती उसकी खामोशी टूटने लगी है। एक बार अमृता प्रीतम की इंदिरा गांधी जीसे मुलाकात हुई तो अमृती प्रीतमने पूछा – ''आपका औरत होना कभी आपके रास्ते की रूकावट बना है? इस सवाल का जवाब देते हुए इंदिराजी ने कहा –'' मैंने हमेशा अपने को इंसान तसब्बुर किया है। औरत या मर्द की सूरत से कभी नहीं सोचा। जहां तक जेहनी कातिलियत का सवाल है, मैं शुरू से जानती थी कि कोई भी मसला हो, मैं औरों की बनिस्वत उसे बेहतर तौर से सुलझा सकती हूँ, शिवाय इसके कि जिस्मानी तौर पर ज्यादा वजन नहीं उठा सकती।''[11] संविधान के चलते ही हमारी यहां सदियों से प्रताड़ित नारी आज प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति तक बन चुकी है। यह संविधानिक मूल्यों की ताकद है, इसी की छाया हिंदी नाटकों में दिखाई देती है।

सदाचार यह हमारे की प्राचीन सभ्यता से चला रहा जीवन है। महावीर, बुद्ध ने इस मूल्य पर सर्वाधिक बल दिया परन्तु आधुनिक युग तक आते–आते सदाचार की जगह व्यभिचार, अनैतिकता,भष्टाचार ने ली है। भ्रष्टाचार के चलते हमारा देश खोखला होता जा रहा है। भ्रष्टाचारी दीमक नेता देश को चाट रहे हैं। अधिकारी से लेकर आला नेता भ्रष्टचार में लिप्त है। ये लोंग संवैधानिक न्याय और अधिकारों का हनन करके आम जनता को लूट रहे हैं। हमारा देश लूटेरों का लोकतंत्र बन चुका है। इसी के चलते हमारे यहाँ की गरीबी कम नहीं हो रही है। अमीर और गरीब में खायी बढ़ती जा रही है आला नेता न खाउंगा न खाने दूंगा का नारा लगा रहे हैं लेकिन उसका कोई फायदा नहीं हो रहा है।

नाटककार मुदाराक्षन ने अपनी नाट्य कृति 'आला अफ़सर' (1981) में को रस में ही भ्रष्टाचार का सच्चा आईना दिखाते हुए कहा है –

''आ गये भेड़िये, खैर बकरे की मनाएं।
माँ कहां तक देखिए, खून इसके यूं लगा दे।
भेड के चेहरे पहनकर, ये न छोडेंगे मिसाल
बांटता अंधा बताशे, दे खुद को बार बार।''[12]

''आज भ्रष्टाचार देश की गंभीर समस्या है। सरकार मंत्रालयों, मंत्रालय, शिक्षण संस्थाओं में भ्रष्टाचार, शिष्टाचार बन चुका है। भ्रष्टाचार को रोकना बड़ा मुश्किल काम है। भ्रष्टाचार, शिष्टाचार बन चुका है। भ्रष्टाचार सामान्य युगधर्म बन चुका है। चहु ओर चरित्र का अवमूल्यन हो रहा है। विनोद रस्तोगी ने ''बर्फ की मीनार' में, चंद्रगुप्त विद्यालंकार ने 'न्याय की रात' में भटनागर के 'जहर' राजेन्द्रकुमार शर्मा ने 'अपनी कमाई' में भ्रष्टाचार का चित्रण किया है। ''बर्फ की मीनार'' में किशोरीलाल और हजारीलाल के संवादों के माध्यम से भ्रष्टनीति को उजागर किया है। किशोरीलाल – 'कई तो यार बेधडक रिश्वत लेते हैं, जरा नहीं डरते कि पकड़े जायेंगे। हजारीलाल – पकडे जाओं तो भी क्या है? किशोरीलाल – क्यों? हजारीलाल – लोहे को लोहा काटता, कांटे से काटा निकलता है। रिश्वत लेकर पकड़े जाओ तो रिश्वत देकर छूट जाओं''

'न्याय की रात' नाटक का पात्र हेमंता जनता को नज़र मे सम्मानित नेता है लेकिन वह एक भ्रष्ट चालाक व्यक्ति है, जो बड़े–बड़े पूंजीपति और अफ़सरों को पैसों का प्रलोभन देकर उनसे गैर कानूनी काम करवाता है और उन्हें कानून से संरक्षण भी देता है। वह कहता है – ''मेरा पेशा है बेईमान व्यक्तियों के लिए परमिटों का इंतजार करना ..... बड़े–बड़े ठेके दिलवाना। 'ज़हर' नाटक में भी श्यामचरण भ्रष्ट नेता है, बेईमान व्यक्ति है। वह अपनी प्रेमिका से कहता है – ''ते तो बेवकूफ है। मैं इस पार्टी को छोड़ दूँ? जिसकी आड़ में मैंने सौं धंधे शुरू कर दिये है। हजारों का इधर–उधर कर देता हूँ फिर लाखों का हुआ करेगा। पब्लिक में रेप्युटेशन है, नाम है। 'अपनी कमाई' नाटक का युवा पात्र' अपने चरित्र खोकर प्रलोभन के कारण जीवनमूल्यों को खो देता है। आर्थिक रूप से सबल होने के लिए भ्रष्टाचार का रास्ता अपनाता है।'' आलोच्य तीनों नाटकों का उद्देश्य स्वतंत्र भारत से भ्रष्टाचार का समूल नाश करना और देश में गहरी एकता को प्रचार–प्रसार करना है।

निष्कर्ष :–

उपरोक्त आलोच्य नाटकों का अध्ययन करने से पता चलता है कि संवैधानिक मूल्यों की स्थापना में हिंदी नाटकों की बड़ी भूमिका रही है। मूल्य यह शब्द भले ही साहित्य का शब्द न हो, साहित्य में जीवन मूल्यों का स्थान शुरू से ही रहा है। साहित्य जीवन से निकलता है अतः जीवन के मूल्यों को भी कोई नकार नहीं सकता। मानव मूल्य यह मानव को मानवता या मनुष्यत्व को इंसानियत को सिद्ध करनेवाले ऐसे गुण अथवा तत्व है जिसके अभाव में उन तत्वों की महत्ता या उपयोगिता कम नहीं होती बल्कि और बढ़ जाती है। यह तत्व मनुष्य की नीति या आयात से जुड़े हैं, इसीलिए इसका नीतिशास्त्र के अन्तर्गत अभ्यास किया जाता है। यह नैतिकता ही मनुष्य को बयाएं रखने का काम करती है। उसे उदात्त भावभूमि तक पहुँचाती है। यह जीवन मूल्य मानवीय प्रतिष्ठा और गौरव के द्योतक हैं तभी तो डॉ. अम्बेडकर ने श्वाश्वत जीवनमूल्यों को संविधान में स्थान दिया है। साहित्य भी संविधान के समान देशनिष्ठा, धर्मनिरपेक्षता, सामाजिकता, मूल्यात्मकता का साधन है। साहित्य के मूल तत्व हैं। श्रमिक, शोषित, पीड़ित, वंचित आदि साहित्य के केन्द्र में होते हैं। मनुष्य के धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजकीय, आर्थिक सभी प्रकार के शोषण एवं गुलामी को साहित्य नकारता है और मानव मुक्ति का पुरस्कार करता है। वह शोषणयुक्त समताधिष्ठित नव समाजनिर्मिती का प्रयास करता है। मानवी प्रतिष्ठा को सर्वोच्च मूल्य मानता है। मनुष्य को व्यवस्था के केन्द्र में रखकर उसके समग्र सार्वजनिक परिवर्तन का आग्रह करता है। लोकपरंपरा के तत्वशील बातों का शोध करके उसका कालानुरूप विकास करता है। साहित्य में भी नाटक विधा इसमें अग्रसर है।

संदर्भ :–

1) डॉ. विणा गौतम, हिंदी नाटक, पृ. 197
2) वहीं, पृ. 151
3) डॉ. अम्बेडकर, संपूर्ण वाड़मय, खंड 5 पृ. 178
4) सार्त्र, What is Literature P. 65
5) डॉ. लक्ष्मीनारायन लाल, सूखा सरोवर, पृ. 13
6) वही, पृ. 14
7) डॉ. चंद्रशेखर, हिंदी नाटक, आजतक से उधृत, पृ. 267
8) राम की लड़ाई, लक्ष्मीनारायणलाल पृ. 58
9) आजकल, पत्रिका, सितंबर 2016, पृ. 40
10) विष्णु प्रभाकर, अब और नहीं, पृ. 15
11) अमृता प्रीतम, अक्षरो की अजमत पृ. 140
12) आला अफ़सर, मुद्राराक्षस, पृ. 35
13) डॉ. वीणा गौतम, हिंदी नाटक आजतक, पृ. 295

LBP PUBLICATION